सामाजिक परिवर्तन और विद्यालय

ARTICLE APPEARED IN DESHBANDHU, A NATIONAL DAILY OF M.P. ON 17 JULY, 1993

Dr.A.K.Pandey
Principal, NMDC,Panna

शिक्षा के द्वारा कोई भी समाज अपने रहन–सहन और अपने गुणों को आने वाले पीढ़ियों में पहुंचाता है। शिक्षा समाज के माप–गुण को व्यक्त करने वाला एक सशक्त माध्यम है। एक बच्चे को हम मूल्य में रखकर शिक्षित नहीं कर सकते है। वह समाज का एक सदस्य है और शिक्षा ही एक माध्यम है जो उसे समाज के लिये एक योग्य नागरिक बनाती है। समाज में होने वाले समाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन शिक्षाके ऊपर पूर्ण प्रभाव डालते है। यह परिवर्ततन शिक्षा के उद्धेश्य, उसके माध्यम और उसके तरीके को प्रभावित करता है।

अगर हम ध्यान दें तो पायेंगें कि प्राचीन काल से लेकर अब तक समाज में होने वाले परिवर्तनों ने शिक्षा को अपने उद्धेश्य प्राप्ति के अनुसार परिवर्तित किया है।

प्राचीन भारत में शिज्ञखा का मूल्य उद्धेश्य या आत्मज्ञान क्योंकि वह समाज ईश्वर को परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किये या तथा शिक्षा ईश्वर के पास पहुंचने वाले एक मार्ग के रूप में देखी जाती थी। विद्धानों की वे पूजा करते थे तथा शिक्षा रोजी–रोटी कमाने का साधन मात्रा नहीं था। प्राचीन भारत की शिक्षा गुर और शिष्य के मध्य ज्ञान का प्रवाह था वह शिष्य को स्वीकार करे अथवा नही। गुरू से वह सिर्फ शिक्षा की प्राप्ति ही नहीं करता था बल्कि समाज में रहने के लिये आवश्यक गुणों को भी सीखता था।

समय के परिवर्तन के साथ समाज में भी परिवर्तन आया और शिक्षा का क्षेत्रा भी इससे अधूरा नहीं रहा। मध्यकाल में नालंदा, तक्षशिला, उज्जैन सारनाथ विक्रमशिला इत्यादि विश्वविद्यालयों का शिक्षा के क्षेत्रा में उदय हुआ। इन सभी जगहों पर शिक्षा

ग्रहण करने के लिए कोई पैसा नहीं लगता था तथा ये राजाओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त क्षेत्रा थे। उस समय भारत शिक्षा के क्षेत्रा में प्रभावशील देश माना जाता था तथा दूर–दूर के विद्यार्थी यहां शिक्षा प्राप्ति के लिये आते थे। इन विश्वविद्यालयों का इतिहास शिक्षा को विद्यार्थियों के आत्मज्ञान बढ़ाने के रूप में भी जाना जाता है।

मध्यकालीन भारत में हिन्दुओं के पाठशालाओं और मुसलमानों के 'मदरसों' का मुख्य उद्देश्य हो गया धार्मिक शिक्षा और यहीं से शिक्षा के क्षेत्रा में राजनीतिज्ञों (उस समय के राजाओं और महाराजाओं) का दखल दिखाई देने लगा क्योंकि व पाठशालायें और मदरसे राजाओं की कृपा से ही चलते थे। इसी समय शिक्षा के क्षेत्रा में एक महान बदलाव आया और वह था शिक्षा का रोटी–रोजी के साथ जुड़ना क्योंकि इन पाठशालाओं तथा मदरसों से पढ़कर निकले हुए विद्यार्थी ही राज दरबार में नौकरी पाते थे। इतना होते हुए भी उस समय अनुशासन दिखाई पड़ता था।

अंग्रेजों के आने के साथ ही भारतीय शिक्षा में पूर्ण बदलाव दिखाई देने लगा। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति ने शिक्षा का व्यवसाईकरण पर जोर देना शुरू कर दिया। शिक्षकों को वेतन दिया जाने लगा और विद्यार्थियों में पडने के लिये फीस ली जाने लगी। शिक्षक जो अभी तक शिक्षा को दान के रूप में देते चले आये थे उसे अब वे बेचने लगे, साथ ही शिक्षा अब सबके लिये नहीं रह गई बल्कि इस पर एक खास वर्ग का अधिकार होता चला गया।

शिक्षा को समाज के अनुसार चलना चाहिए या समाज को शिक्षा के अनुसार यह एक वाद–विवाद की बात हो सकती है। लेकिन हम देख रहे है कि हमेशा से ही समाज ने शिक्षा को अपने अनुसार चलाने की चेष्टा की है। शिक्षा का स्तर विद्यार्थियों के शिक्षा ग्रहण करने के स्तर के ऊपर निर्भर करता है। जो समाज के उतार–चढ़ाव के अनुसार बदलता रहता है। शिक्षा का व्यवसाईकरण जो अंग्रेजों के समय हुआ उसका फल हम आज तक भोगते आ रहे है। वर्तमान में हमारा उद्देश्य हो गया है शिक्षा का लोकव्यापीकरण चाहे यह जिस स्तर पर संभव है। लेकिन हम यह भूल रहे है कि हम अच्छे और बराबर एक ही साथ नहीं हो सकते है। अपवाद नियम की प्रगाढता ही बतलाता है।

शिक्षा का लोकव्यापीकरण यह शब्द देखने में तो बहुत लुभावना लगता है लेकिन इसका प्रभाव समाज पर दिखाई देने लगा है।

तब गलियों में दो हमरों के महाविद्यालय कागजी आंकडे के लिये तो ठीक हो सकते है लेकिन इनके दूरगामी परिणामों को भुगतने के लिए भी हमें अपने आपको तैयार कर लेना चाहिए। जब शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सर्टीफिकेशन ही रह गया है तो वृद्धि के विकास पर जोर देना एक अनावश्यक बात ही है। हममें से कोई भी इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि मनुष्य में चेतना जगाने का सर्वोत्तम उपाय है शिक्षा। बच्चों को कैसी शिक्षा दिलाई जानी चाहिए वह कब से देनी चाहिए और किस स्तर की हो वह हमारा मुख्य उद्देश्य है। अच्छी शिक्षा का महत्व छात्राों के लिए अंत तक बना रहता है।

शिक्षा का लोकव्यापीकरण वह शब्द देखने में तो बहुत लुभावना लगता है लेकिन इसका प्रभाव समाज पर दिखाई देने लगा है। तंग–गलियों में दो कमरों के महाविद्यालय कागजी आंकडे के लिये तो ठीक हो सकते है लेकिन इनके दूरगामी परिणामों को भुगतने के लिए भी हमें अपनी आपको तैयार कर लेना चाहिये। जब शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सर्टीफिकेशन ही रह गया है तो बुद्धि के विकास पर जोर देना एक अनावश्यक बात ही है। हम में से कोई भी इस बात से इंकार नही कर सकता कि मुनष्य में चेतना जगाने का सर्वोत्तम उपाय है– शिक्षा। बच्चों को कैसी शिक्षा दिलाई जानी चाहिए, वह कब से देनी चाहिए और किसी स्तर की हो, यह हमारा मुख्य उद्देश्य है। अच्छी शिक्षा का महत्व छात्राों के लिए अंत तक बना रहता है।

लेकिन अच्छी शिक्षा का तात्पर्य इस अगर अधिक से अधिक सर्टीफिकेट इकट्ठा करना ही लगाते है तो यह हमारी भूल है और इस अंधेरे में रहकर रोजानी का इंतजार कर रहे है। हमारे लिए यह दुर्भाग्य की ही बात है कि स्वतंत्राता प्राप्ति के 45–46 वर्षो के बाद भी हम कोई सफल शिक्षा नीति का निर्धारण नहीं कर पा रहे है बलिक रोज इस क्षेत्रा में नया परिवर्तन करते चले आ रहे है। हमें यह भी नहीं मालुम पड रहा है कि हमारा उद्देश्य क्या है और हम प्राप्त क्या करना चाहते है। कभी तो हम अपना नारा ध्यान शिक्षा के लोकव्यापीकरण पर लगा रहे है तो कभी हम शिक्षा के व्यवसायीकरण पर जोर दे रहे है। सरकारी नीतियों को हम बिना वाद–विवाद ज्यों का

त्यों लागू करते जा रहे है। अगर हम ठीक से देखें तो हमें यह जल्द ही दिखाई पड़ जायेगा कि दूसरे क्षेत्राों में किसी भी नीति को लागू करने के पहले हम उसके अच्छे और बुरे परिणाम का अच्छी तरह से विश्लेषण करते है लेकिन शिक्षा के क्षेत्रा में हमें ऐसा करना समय की बर्बादी ही मान रहे है। बढ़ती हुई शिक्षित बेरोजगारों की भीड भी हमें दिखाई दे रही है। जब हम शिक्षा का व्यवसायीकरण कर ही चुके है तो इसे व्यवसाय का दर्जा दिलाने का हिचकिचा क्यों रहे हैं? क्या ऐसा नहीं है कि हममें से कोई भी इनके दूरगामी परिणामों को अपने कंधों पर लेने से हिचकिचा रहा है। कभी केन्द्रीय विद्यालय कभी नवोदय, कभी विभागीय शिक्षा नीति तो कभी द्विभाषी शिक्षा नीति किसी राज्य में धन दो को महाविद्यालयों के साथ जोडने की नीति को कभी स्कूल के साथ जोडने की नीति, आखिर यह क्या है समय रहते हमें चेतना होगा, नहीं दो बहुत देर हो जायेंगी।